ध्यान दें:

6

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रत्यक्ष प्रमाण

यह विषय सुबोध हो इसलिए पूर्वपाठ में बुद्धि के द्वारा अनेक विषयों का उपस्थापन किया गया है। जिसमें प्रमा रूपी प्रमुख विषय था। तो प्रमा क्या है इसका पूर्व में विवरण दिया जा चुका है।

इस पाठ में प्रमा के भेदों का उल्लेख करके उनमें प्रथम प्रमा प्रत्यक्ष प्रमा क्या है इसका उपस्थापन किया जायेगा। वृत्ति यह वेदान्त का अपर विशेष होता है। वृत्ति भी इस पाठ में वर्णित की गई है। सन्निकर्ष, इन्द्रियों का करणत्व, ज्ञानादि किसके धर्म होते है, चैतन्य किसके भेद होते हैं, ज्ञानज्ञत प्रत्यक्ष का क्या प्रयोजक होता है। विषयगत प्रत्यक्ष का प्रयोजकत्व ये सभी विषय इस पाठ में दिये गये हैं। विषय न्याय शैली में लिखे गये है। भले ही विषय क्लिष्ट है फिर भी बार बार पढ़ने पर वो सुबोध हो जाते हैं। तथा प्रथम बार में ही सभी विषय बुद्धि में आरुढ़ हो जाए तो यह नहीं कह सकते हैं। इसलिए जहाँ पर विषय अवगत नहीं हो वहाँ पर पठन को विराम दिए बिना आगे पढ़ना चाहिए। हो सकता है वह विषय प्रकारान्तर से आगे प्रतिपादित किया जाए। तब वह ज्ञान अच्छी प्रकार से स्पष्ट हो सकता है। बहुत जगह एक विषय का ज्ञान अपर विषय के ज्ञान से स्पष्ट हो जाता है। इसलिए आगे अध्ययन हेतु एक बार फिर अध्ययन की आवश्यक्ता होती है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- वेदान्त के मत में प्रमा के भेद को जान पाने में;
- छः प्रकार की प्रमाओं में से प्रत्यक्ष प्रमा को जान पाने में;
- वृत्ति को समझ पाने में;
- इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जान पाने में;
- ज्ञान, सुख, दु:ख, धर्म तथा अधर्म, इत्यादि किसके धर्म होते हैं यह जान पाने में;
- ज्ञानगत जो प्रत्यक्ष है उसके प्रयोजक को जान पाने में;
- विषयगत जो प्रत्यक्ष है उसके प्रयोजक को समझ पाने में;

पाठ-6

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रत्यक्ष प्रमाण

ध्यान दें:

6.1) प्रमा के भेद

प्रमा छः प्रकार की होती है। प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति, शाब्दी, अर्थापत्ति, तथा अनुपलब्धि। प्रमाण भी छः होते हैं यह भी पहले ही कहा जा चुका है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि ये छः प्रमाण होते हैं। उनमें प्रत्यक्ष प्रमा का करण प्रत्यक्ष प्रमाण होता है।

तो कहते हैं कि प्रत्यक्ष प्रमा क्या है? लक्षणघटक भूतों के पदों के अर्थ के ज्ञान से ही लक्ष्य का ज्ञान सम्भव होता है। जबतक प्रत्यक्ष प्रमा को जाना जाता है तबतक प्रत्यक्ष प्रमाण को नहीं जाना जाता है। कुछ अनुमानादि प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण के आश्रित होते हैं। इसलिए प्रत्यक्ष प्रमाण का ज्येष्ठत्व होने के कारण सबसे ऊपर उसका उपस्थान किया जा रहा है।

प्रत्यक्ष प्रमा क्या है इसके प्रतिपादन से पूर्व उससे सम्बन्धित कुछ विषयों को स्पष्ट करते है।

प्रत्यक्ष शब्द के अर्थ

प्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग तीनों अर्थों मे किया जाता है जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण, प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रत्यक्ष विषय। कब किस अर्थ में इनका प्रयोग होता है इसे वहाँ सावधानी पूर्वक समझना चाहिए।

विषय

जीव ब्रह्म होता है न की कोई ओर। जीव तथा ब्रह्म की एकता वेदान्त का प्रतिपाद्यविषय है। इनकी एकता का ज्ञान ही मोक्ष कहलाता है। तथा ब्रह्मज्ञान भी कहलाता है। ब्रह्म का स्वरूप क्या है? यह जिज्ञासा भी सामान्य रूप सभी के मन में उत्पन्न होती है। सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म (तै.उ.) इत्यादि श्रुति के प्रमाण से ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप होता है। और भी बहुत प्रकार से ब्रह्म का प्रतिपादन किया जाता है। परन्तु उस विषय का सूक्ष्म विचार इस पाठ का प्रतिपाद्य विषय नहीं है। इसलिए यहाँ पर विस्तार करने से रुका जा रहा है।

ब्रह्मस्वरूप

ब्रह्म ही चैतन्य कहा जाता है। इस ब्रह्म में सम्पूर्ण जगत् अध्यस्त है। जैसे रस्सी में सर्प होता है। जैसे सीपी में चांदी अध्यस्त होती है, जैसे मरूस्थल में मरीचिका में मृगजल अध्यस्त होता है। वैसे ही चैतन्य में जगत् अध्यस्त होता है। इसलिए चैतन्य अधिष्ठान कहा जाता है। जैसे जब रस्सी में सर्प प्रतीत होता है तब वहां द्रष्टा को रस्सी नहीं दिखाई देती है। रस्सी विषयक अज्ञान होता है, अधिष्ठान रज्जु का जब ज्ञान हो जाता है तब सर्पत्व का विलोप हो जाता है। अत: अधिष्ठान ज्ञान से ही अध्यस्त सर्प का विलोप हो जाता है। जगत् का अधिष्ठान जो चैतन्य है, उसका ज्ञान होता है सम्पूर्ण जगत् का विलोप हो जाता है। अर्थात् जगत् जगत् रूप में प्रतीत नहीं होता है। जगत् ब्रह्मरूप में ही प्रतीत होता है। सर्वं खल्विदं ब्रह्म इस प्रकार की श्रुति के कारण।

सृष्टि के क्रम से अन्त: करण का सावयवत्व

चैतन्य विषयक अज्ञान ही जगत का सृष्टि के प्रति कारण होता है। अन्त: करण जगत् में शरीर इन्द्रियाँ विषय इत्यादि सभी अज्ञान से ही उत्पन्न होते हैं।

तस्माद्वा एतस्माद् आत्मन आकाश: सम्भूत: आकाशाद्वायु: वायोरग्नि: अग्नेराप: अद्‌भ्य: पृथ्वी पृथिव्या ओषधय: इति श्रुते: (तै.उ. ब्र.व.1.1)।

अन्तः करण भी आकाशादि पञ्चतन्मात्राओं के सात्विकांश से मिलकर के उत्पन्न होता है। अतः वह तेजस कहलाता है। अर्थात् रवि की किरण की तरह स्वच्छ प्रकाशक लघु तथा चर होता है। अतः यह अन्तः करण जन्य पदार्थ है। अन्तः करण परमाणु के परिमाण रूप में होता है। इसलिए अवयव सहित अन्तः करण का आकार परिणाम ही सम्भव होता है। इसलिए अन्तः करण वृत्ति रूप में भी परिणित होता है जिसका आगे प्रतिपादन किया जाता है।

यहां पर है श्रुतिप्रमाण ये है - 1) तन्मनोऽसृजत इति। (उस ब्रह्म ने मन अर्थात् अन्तः करण का सर्जन किया इसमे वह ब्रह्म कर्ता के रूप में तथा अन्तकरण का सृजन कर्म के रूप है) 2) एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। (मु.उ. 2.2) (प्राण मन तथा सभी इन्द्रियाँ ब्रह्म से ही उत्पन्न होती है) 3) अन्नमसितं त्रेधा विधीयते, तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत् पुरीषं भवति, यो मध्यमस्तन्मांसं, योऽनिष्ठस्तन्मनः इति। (छा.उ. 6.5.1) (अर्थात् मन उत्पन्न होता है यह तात्पर्य है)

वृत्ति

घट विषयक चाक्षुष प्रत्यक्ष ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है। जहां सम्मुख घट होता है वहाँ अन्तः करण में आँखों के द्वारा घटाकार चला जाता है।

जिस प्रकार तड़ाग में स्थित जल छिद्रों से निकलकर नहरों मे प्रवेश करके फिर चतुष्कोणाकार हो जाता है। छिद्र से ही तड़ागादि से बाहर भी निकलता है। फिर छोटी नहरों तथा धारों के माध्यम से खेतों में प्रवेश करके करता है फिर यदि खेत त्रिकोणात्मक होता है तो त्रिकोणाकार तथा यदि खेत चतुर्कोणात्म होता है तो चतुर्भुजाकार हो जाता है। अर्थात स्थान के आकार का हो जाता है।

जैसे बाल्टी में गणेश जी की मूर्ति रखने बाद उसमें जल भरते हैं तो जल मूर्ति के चारों ओर हो जाता है अन्दर मूर्ति बाहर जल। तब जल मूर्ति के आकार का हो जाता है ऐसा कहा जा सकता है।

जैसे द्रवीभूत धातु चूहे का आकार के खांचे में डालने के बाद चूहाकार में परिवर्ति हो जाती है।

अन्तः करण भी इन्द्रियों के द्वारा बाहर जाकर घटादि विषयों के चारों और व्याप्त हो जाता है। तब कहा जाता है कि अतः करण घटादिविषयाकार हो जाता है। अन्तः करण का यह घटादिविषयकार ही वृत्ति कहलाता है। अन्तःकरण जब जिस रूप में रहता है तब उसका आकार वृत्ति कहलाता है। वह वृत्ति परिणात्मिका होती है। और परिणाम ही विकार होता है। वह अवयवों के अन्यथा रूप होता है। परन्तु अन्तः करण सावयव युक्त होता है। कहा भी गया है सावयव युक्त अन्तः करण का परिणाम हमेशा सम्भव होता है।

गुण क्रिया आदि आकार वाली वृत्ति कैसे होती है?

घटादि द्रव्य होते हैं। अन्तः करण भी तदाकार होने के योग्य होता है। लेकिन घटादि विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। तथा गुण का और क्रिया का द्रव्यगुणत्वादि का भी प्रत्यक्ष उत्पन्न होता ही है। गुणादि का कोई भी अपना आकार विशेष नहीं होता है। इसलिए कैसे अन्तः करण गुणाकार तथा क्रिया आकार वाला हो।

समाधानः-1 गुणादि का तदाश्रय द्रव्य से अत्यन्त भेद नहीं है। जो आकार आश्रय द्रव्य का होता है वह आकार ही गुणक्रियादि का भी समझना चाहिए। इसलिए गुणादि आकार अन्तः करण हो सकते हैं।

समाधानः-2 घट को में नहीं जानता अर्थात घट विषयक ज्ञानवाला मैं, इस प्रकार के अज्ञान का

पाठ-6

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रत्यक्ष प्रमाण

ध्यान दें:

अनुभव होता है। इसलिए घटादि विषय अज्ञान के द्वारा आवृत्त रहते हैं। जब घटादि से अज्ञान का आवरण हटता है तब घटादि विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है।

जब तक घटादि विषय अज्ञान से आवृत रहते है तब तक 'घट है' 'घट को देखता हूँ' इस प्रकार के व्यवहार अन्तः करण में उत्पन्न नहीं होते हैं। अतः यह अज्ञान ही 'घट है' इसलिए अस्तित्वादि यह अस्तित्वादि व्यवहार का प्रतिबन्धक है। अन्तः करण का जिस इन्द्रिय के साथ सम्बन्ध है उस इन्द्रिय का जब विषय के साथ सम्बन्ध होता है तब अन्तः करण की कोई विशिष्ट अवस्था होती है, जिसमें अज्ञान का निवारण होता है तथा घट है इस प्रकार का व्यवहार सम्भव होता है, अन्तः करण की यह अवस्था अस्तित्वादि व्यवहार की प्रतिबन्धक है जो अज्ञान की निवृत्ति योग्य अवस्था हो सकती है। यह अवस्था विशेष ही वृत्ति कहलाती है।

पाठगत प्रश्न 6.1

1. प्रमा के कितने भेद होते हैं तथा कौन-कौन होते हैं?
2. ज्येष्ठ प्रमाण कौन-सा होता है?
3. प्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग कितने तथा किन अर्थों में होता है?
4. अन्तः करण सावयव अथवा निरावयव?
5. आकाश नित्य है अथवा अनित्य?
6. मन जो कार्य होता है, उसमें प्रमाण श्रुति कौन-सी है?

6.2) प्रत्यक्ष प्रमा

मैं घट को नहीं जानता हूँ, अर्थात् घट विषयक ज्ञानवाला मैं इस प्रकार के आकार के ज्ञान में अज्ञान का अनुभव होता है। इसलिए घटादि विषय अज्ञान से आवृत्त होते हैं। जब घटादि से अज्ञान का आवरण हटता है, तब घटादिविषयक ज्ञान उत्पन्न होता है। अज्ञान का निवारण कब होता है, जब उपरोक्त प्रकार से वृत्ति उत्पन्न होती है, तब घटादि विषयगत अज्ञान का आवरण हटता है। घटादि विषय वास्तविक रूप से तो घटादि विषय चैतन्य कहलाते हैं। जब घट का आवरण हटता है तब यह निवृत्ति ही विषय चैतन्य की अभिव्यक्ति कहलाती है। अगर ये कहें की पट से आवृत्त घट कब अभिव्यक्त होता है? उत्तर - जब पटात्मक आवरण हटता है तब अभिव्यक्त होता है। अर्थात् अज्ञान के आवरण की निवृत्ति ही विषय की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार से अभिव्यक्त विषय चैतन्य ही विषय प्रमा कहलाती है। और चैतन्य ही प्रत्यक्ष प्रमा है। शुद्ध अर्थात् उपाधि रहित चैतन्य प्रमा नहीं है।

सन्निकर्ष

इन्द्रिय का जब विषय के साथ सम्बन्ध होता है तब वृत्ति उत्पन्न होती है उस वृत्ति से विषय चैतन्य अभिव्यक्त होता है। इन्द्रिय तथा विषय का वह सम्बन्ध ही सन्निकर्ष कहलाता है।

इन्द्रिय का करण

तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वं व्यापार लक्षणम्। इन्द्रिय सन्निकर्षात्मक व्यापार के द्वारा प्रत्यक्ष प्रमा के प्रति कारण होता है। प्रत्यक्ष प्रमा इन्द्रिय जन्य होती है। जब तक सन्निकर्ष नहीं होता है तब तक

ध्यान दें:

प्रमा उत्पन्न नहीं होती है। इसलिए सन्निकर्ष को प्रमा का जनक कहा जाता है। इन्द्रियों का सम्बन्ध ही सन्निकर्ष कहलाता है। अत: सन्निकर्ष इन्द्रियजन्य भी होता है। इस प्रकार से सन्निकर्ष में इन्द्रियजन्यत्व है, तथा इन्द्रियजन्य प्रमा का जनकत्व होता है। इसलिए इन्द्रियजन्य होने पर इन्द्रियजन्यकत्व से सन्निकर्ष व्यापार होता है। व्यापार इन्द्रिय का ही होता है इसलिए इन्द्रियाँ व्यापारवान् कहलाती है। और इन्द्रिय प्रमा के प्रति कारण भी होती है। इसलिए इन्द्रियाँ व्यापारवान् असाधारण कारण कहलाती हैं। अत: इन्द्रियाँ प्रमा के प्रति कारण हैं ये सिद्ध होता है। और प्रमा का करण प्रमाण होता है। अत: इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमा के प्रमाण होती है।

अनादि चैतन्य प्रमा कैसे होती है

चैतन्य तो अनादि अर्थात् अजन्मा होता है, वह उत्पत्ति रहित होता है उसका आदि नहीं होता है। तथा प्रमा उत्पन्न होती है। चैतन्य ही प्रमा है ऐसा कहा गया है। प्रमा का करण प्रमाण कहलता है। करण अर्थात् करण विशेष। अत: जिसका कारण होता है वह प्रमा सादि अर्थात् जन्या उत्पन्न होने वाली होती है। प्रमा ही चैतन्य होती है। तब कहते हैं कि वह प्रमा सादि कैसे होती है तथा चैतन्य अनादि कैसे होता है? यदि चैतन्य अनादि होता है तो उसका कोई कारण सम्भव ही नहीं होता है, यह प्रश्न उत्पन्न होता है। तब कहा जाता है भले ही विशेष्य अनादि हो फिर भी उसका विशेषण यदि सादि हो तो विशेषण विशिष्ट वह विशेष्य भी सादि कहलाता है। प्रकृति में इन्द्रियार्थसन्निकर्ष से अन्त: करणवृत्ति उत्पन्न होती है। उसी वृत्ति में विषय चैतन्य अभिव्यक्त होता है। वृत्ति सादि होती है वृत्ति से अभिव्यक्त चैतन्य भी सादि तथा जन्य कहा जाता है। वह इस प्रकार से जैसे घट नील किया जाता है। इसमें नील अवछिन्न घट विशेष्यभूत होता है। वह पहले से ही उत्पन्न है। जब वह नीला किया जाता है तब वह अजन्य ही है, फिर भी विशेषणी भूत नीलगुण तो उसका उसी समय उत्पन्न होता है। इसलिए नीलावच्छिन्न घट भी उत्पन्न होता है ऐसा कहा जाता है। उसी प्रकार वृत्तिविशिष्ट चैतन्य भी अजन्य है। फिर भी उसी की तरह छेदकवृत्ति इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से उत्पन्न होती हैं। इसलिए उसी प्रकार वह अवच्छिन्न चैतन्य भी जन्य कहलाता है।

वृत्ति ज्ञानोपचार

सैद्धान्तिक दृष्टि से तो वृत्ति ही ज्ञान कहलाती है। लेकिन ज्ञान चैतन्य होता है। और वृत्ति: अन्त: करण का परिणाम जड होती है। तो फिर वृत्ति ही प्रमा कैसे है। और चेतन्य ही जड़ कैसे है। लेकिन सिद्धान्त में इन्द्रिय ही प्रमाण कहलाता है। करण का व्यापार अव्यवहित उत्तर वृत्ति उत्पन्न करता है। वह वृत्ति ही इन्द्रियों से बाहर जाती है तथा विषय के साथ लगकर विषयचैतन्य की अभिव्यक्ति करती है। यह करण ही प्रमा करण कहलाता है। प्रमा ही अभिव्यक्त चैतन्य होता है। इसलिए यह करण तो वृत्ति के प्रति करण होता है न की प्रमा के प्रति भले ही करणव्यापार से अव्यवहित होकर जो उत्पन्न होता है उसके प्रति वह करणत्व होता है।

अभिव्यक्त प्रमा चैतन्य की वृत्ति उपाधि होती है। यह वृत्ति ही प्रमा चैतन्य को अन्य चैतन्य में व्यावर्तित करती है। अत: यह वृत्ति प्रमा चैतन्य की अवच्छेदिका होती है। इसलिए वृत्ति ही चैतन्य रूप ज्ञान की अवच्छेदिका होती है। यह वृत्ति चैतन्य में अभेद से अध्यस्त होती हुई प्रमात्व को प्राप्त करती है। अत: वृत्ति में प्रमात्व के सत्व से वृत्ति प्रमा अर्थात् 'ज्ञान' इस प्रकार व्यवहार होती है। वृत्ति चक्षु आदि इन्द्रियों के व्यापार से अव्यवहित होकर उत्पन्न होती है। अत: इन्द्रिय वृत्ति के प्रति करण होती है। वृत्ति में ज्ञानत्व का उपचार होता है। इसलिए प्रमा के प्रति इन्द्रिय करण होती हुई प्रमाण होती है इस प्रकार से यह सिद्ध होता है। वृत्ति में ज्ञानत्व का व्यवहार गौंण होने से वह अध्यासविश होता है। न्याय मत में

ध्यान दें:

ज्ञान गुण होता है। वह समवाय से आत्मा में होता है। लेकिन वेदान्तशास्त्र में प्रमात्मक ज्ञान तो चैतन्य रूप में होता है। तथा उपचार से वृत्ति ही प्रमा कहलाती है। वृत्ति अन्त: करण धर्मवाली होकर मनोधर्म वाली होती है न की आत्मधर्मवाली, इसलिए श्रुतियाँ कहती हैं- कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत् सर्वं मन एव इति।

अर्थ- काम (इच्छा), सङ्कल्प (शुक्ल नील आदि भेद से विषयों का विकल्प तथा इस कर्म से यह इष्ट फल प्राप्त होता है इस प्रकार की विषय बुद्धि), विचिकित्सा (संशय), श्रद्धा (आस्तिक्य बुद्धि, वेदादि शास्त्रों में दृढ विश्वास), अश्रद्धा (अनास्तिक्य बुद्धि, शास्त्रों में अविश्वास), धृति (धारणा इष्टवियोग में तथा अनिष्ट प्राप्ति में अवैक्लव्य, देहादि का अवसाद हेतु होने पर उत्तम्भन, अधृति (वहाँ पर वैक्लव्य) ही (अकार्य की प्रवृत्ति वश अप्रतिभत्व तथा लोकलज्जा), धी (बुद्धिवृत्ति) भी (भय) एय सब मन ही (अन्त: करण ही वृत्ति के रूप में परिणित है। इसलिए यह जो ज्ञान है वह श्रुति के द्वारा प्रमाणित है तथा इच्छा आदि इस प्रकार के मनोधर्म होते हैं।

ज्ञान आदि किसके धर्म होते हैं

मैं जानता हूँ, मैं इच्छा करता हूँ, इत्यादि प्रतीति सभी मनुष्यों की होती है। वहाँ मैं ज्ञानवान हूँ अथवा मैं इच्छावान हूँ इस प्रकार के प्रत्यक्ष अनुभव होते है। इस अनुभव से यह सिद्ध होता है कि ज्ञानादि आत्मा के धर्म हो न की मन के धर्म हैं इस प्रकार से नैयायिक आक्षेप करते है।

समाधान वस्तुत: आग जलकर के दहन करती है। लेकिन तप्त लौह पिण्ड में स्पर्श से भी जलने की प्रतीति होती है, वहाँ पर जला हुआ व्यक्ति कहता है कि लोहे का पिण्ड जलाता है। इसलिए कहा जाता है कि- आग तथा लोहे का पिण्ड का तादात्म्य आध्यास ही यहाँ कारण होता है। आग का दग्धृत्व धर्म लौह पिण्ड में आरोपित किया जाता है। इसी प्रकार आत्मा के द्वारा अन्त: करण के ऐक्य का अध्यास होता है। तब आत्मा में ज्ञानसुखादि अन्त: करण के धर्मों का अध्यास होता है। अध्यास वश ही अनुभव होता है कि 'मैं सुखी हूँ' इत्यादि उपपादन किया जाता है।

मैं अर्थेभ्यश्च परं मन: सुखी हूँ इत्यादि अनुभव में जैसे सुख विषय होता है वैसे ही मैं पद अन्त: करण का विषय होता है। जैसे सुख प्रत्यक्ष होता है वैसे ही अन्त: करण भी प्रत्यक्ष ही अङ्गीकार करना चाहिए। इन्द्रिय विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है। अत: अन्त: करण का प्रत्यक्ष होता है। अन्त: करण का अनिन्द्रयत्व को लिए श्रुति कहती है- **इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थो अर्थेभ्यश्च परं मनः** (अर्थात् इन्द्रियों से पर अर्थ होता है, और अर्थ से परे मन होता है)

6.3) प्रत्यक्ष प्रयोजक

इन्द्रियजन्यत्व प्रत्यक्ष का प्रयोजक होता है तो यहाँ पर अव्याप्ति दोष है 1. श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्व तथा घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रयाँ होती हैं। यदि इन्द्रिय का अर्थ के साथ सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष मानते है तब इन पाँच इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष ही होता है। मन इन्द्रिय नहीं होता है। मन के द्वारा सुखादि का ज्ञान होता है। वह सुखादिविषयक ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होता है। परन्तु वेदान्त के मत में तो सुखादि का भी प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। सुखादि प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य नहीं होते है। अत: यहाँ पर अव्याप्ति है। तथा प्रत्यक्षत्व का प्रयोजकत्व क्या है? यह प्रश्न उत्पन्न होता है।

इन्द्रियजन्यत्व यदि प्रत्यक्ष का प्रयोजन हो तो भी यहाँ अव्याप्ति दोष उत्पन्न होता है ईश्वर का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् ईश्वर जो जानता है वह सब प्रत्यक्ष ही होता है। लेकिन ईश्वर तो सर्वज्ञ होता है। तथा उसका ज्ञान नित्य होता है। उसमें ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। अत: वह इन्द्रिय जन्य नहीं होता

ध्यान दें:

है। यदि इन्द्रिय जन्यत्व ही प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक होता तो ईश्वर के प्रत्यक्ष में अव्याप्ति होती है।

इन्द्रियजन्यत्व यदि प्रत्यक्ष का प्रयोजक है तो यहाँ पर भी अतिव्याप्ति दोष है । जो इन्द्रिय जन्य है वह प्रत्यक्षजन्यत्व प्रत्यक्षप्रयोजकत्व है तो यहाँ पर अनुमित भी इन्द्रियजन्या है। मन का सर्वज्ञान के प्रति कारण होता ही है। यदि मन इन्द्रिय है तो अनुमान के प्रति भी कारण मन का ही है। तो अनुमान में प्रत्यक्षत्व की आपत्ति होती है। इसलिए क्या प्रत्यक्षत्व प्रयोजक है इस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न होता है।

प्रत्यक्ष शब्द के तीन अर्थ प्रयोग

प्रत्यक्षत्व जिसमें हो वह प्रत्यक्ष होता है। प्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग तीनों अर्थों में होता है। जैसे प्रत्यक्ष प्रमा, प्रत्यक्ष विषय, तथा प्रत्यक्ष प्रमाण। प्रत्यक्ष प्रमा का करणत्व ही प्रमाणगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक होता है। वह सुविदित है ही। इसलिए यहाँ प्रमागत प्रत्यक्षत्व का तथा विषयगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक क्या है यह प्रस्तुत किया जाता है।

प्रयोजक

प्रयोजक शब्द का व्यवहार बाहुल्य से होता है। अतः प्रयोजक किसे कहते हैं यह समझना चाहिए। अव्यवधान से साक्षात् कार्यजनक कारण होता है। परम्परा के द्वारा कार्यजनक प्रयोजक होता है। कारण का कारण प्रयोजक होता है। जैसे वेग से प्रवाहित वायु से वृक्ष कम्पन करने लग जाते हैं। वृक्षकम्पन्न से फल वृक्ष से अलग होकर भूमि पर गिरते हैं तथा गिरने से टूट भी जाते हैं। यहाँ पर फलों के टूटने तथा फूटने में फल तथा भूमि का संयोग कारण होता है। वायु का प्रवाह तथा वृक्ष का कम्पन्न भी साक्षात् फल के भग्न होने का कारण नहीं वह तो परम्परा के द्वारा होता है। इसलिए यह फलभङ्गप्रयोजक कहलाता है।

इन्द्रियार्थ सन्निकर्षजन्य ज्ञान में ही प्रत्यक्षत्व होता है। अन्यज्ञान में नहीं होता है तो वहाँ उस ज्ञान में प्रत्यक्ष कहाँ नहीं है यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है। लेकिन ज्ञानगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक क्या है।

प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक इसका- 'यह ज्ञान प्रत्यक्ष है' इस प्रकार के व्यवहार का प्रयोजक होता है। 'यह विषय प्रत्यक्ष है' अर्थात् व्यवहार का प्रयोजक है। यह प्रमाण प्रत्यक्ष है, अर्थात् व्यवहार का प्रयोजक है।

वह इस प्रकार से है जैसे 'चैत्र प्रवासी' है यह वाचिक व्यवहार कब सम्भव होता है।अर्थात् चैत्रगत प्रवासित्व का प्रयोजक क्या है? चैत्र जब प्रवास करता है तब वह प्रवासी कहलाता है। अर्थात् प्रवासित्व चैत्र में रहता है। वह तब ही सम्भव होता है जब चैत्र प्रवास करता है, अर्थात् चैत्र का प्रवास करण चैत्रगत प्रवासित्व का प्रयोजक होता है।

उसीप्रकार प्रकृत प्रकरण में यह ज्ञान प्रत्यक्ष है, अथवा इस ज्ञान में प्रत्यक्षत्व है। यह कहाँ कहा जा सकता है यह भी एक अलोचनात्मक विषय है, अर्थात् ज्ञानगत प्रत्यक्षत्व ही विमर्शनीय होता है।

विषयगत प्रत्यक्ष

प्रत्यक्ष ज्ञान विषयत्व अर्थात् प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक होता है इस लक्षण में अतिव्याप्ति दोष है

प्रत्यक्षज्ञान विषयत्व प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक है अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय प्रत्यक्ष है इस प्रकार कहने पर वहाँ दोष होता है। प्रत्यभिज्ञा भी प्रत्यक्ष होता है। वह वह अदन्त अवगाहि ज्ञान ही प्रत्यभिज्ञा कहलाता है। वह यह देवदत्त है इस आकारप्रत्यभिज्ञा में वह ही स्मृति विषय होता है तथा यह ही अनुभव

होते हैं। उस अंश के प्रत्यक्ष नहीं है फिर भी वह वह अंश प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है।

प्रत्यक्ष ज्ञान विषयत्व प्रत्यक्षत्व के विषय में अव्याप्तिदोष है। लेकिन वह कभी भी प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय नहीं होता है। अत: अव्याप्ति दोष उत्पन्न होता है। प्रत्यक्ष विषयत्व विषयगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक नहीं है।

साक्षी

अन्त:करणोपहित चैतन्य साक्षी होता है ऐसा कहा जाता है। साक्षी हमेशा प्रकाश स्वभाव युक्त होता है। साक्षी कभी भी घटादिवत् ज्ञान का विषय होकर प्रकाशित नहीं होता है। साक्षी स्वयं प्रकाश होता है। वह कभी भी अज्ञानावृत्त नहीं होता है।

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च इति श्रुतिः। (श्वे.उ. 6.11)।

उदासीनत्व होने पर जिसमें बोद्धृत्व हो वह साक्षी का लक्षण होता है। यदि उदासीनत्व मात्र ही साक्षी का लक्षण हो तो इन्द्रियादि में अतिव्याप्ति होती है। उनका भी जड़ता के कारण उदासीनत्व होने से। इसलिए बोद्धृत्व का भी उसमें निवेश कराया जाता है। जिससे इन्द्रियादि के जड़त्व से तथा बोद्धृत्व के अभाव से अतिव्याप्ति नहीं होती है। यदि उदासीनत्वपपद अनुपादान में बोद्धृत्व मात्र साक्षिलक्षण होता है, तब जीव में अतिव्याप्ति होती है। जीव का भी बोद्धृत्व सम्भव होता है। इसलिए उदासीनत्व विशेषण उपादान होता है। जिससे अतिव्याप्ति नहीं होती है। जीव के उदासीनत्व भाव से जीव कर्ता भोक्ता इत्यादि रूप से सक्रिय है न की उदासीन।

तीन प्रकार का चैतन्य

ज्ञानगत का विषयगत का तथा प्रयोजकत्व क्या होता है? इसके प्रतिपादन में उपाधिवश चैतन्य के भेदों की कल्पना की गई है। उसके विषयक सुस्पष्ट ज्ञान आवश्यक है जो नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

वृत्ति क्या होती है इसका पूर्व में निरूपण हो चुका है। अन्त: करण के विषय का आकार अथवा अवस्था विशेष वृत्ति कहलाती है। इस वृत्ति के द्वारा अवच्छिन्न चैतन्य ही प्रमाण चैतन्य कहलाता है। वह ही वृत्यवच्छिन्नचैतन्य ही प्रमाण चैतन्य है, इस प्रकार से यहाँ पर प्रमाण का इन शब्दों के द्वारा चैतन्य को कहा जाता है।

जो घटादि ज्ञान के विषय होते हैं, तदवच्छिन्न चैतन्य विषयावच्छिन्न चैतन्य, विषय चैतन्य, इत्यादि शब्दों के द्वारा उसे कहा जाता है तथा वह ही प्रमेय चैतन्य इस नाम से भी कहा जाता है।

अन्त: करण का जितना अंश विषयाकार परिणाम नहीं होता है, उस अन्त: करणांश से अवच्छिन्न चैतन्य, अन्त: करणावच्छिन्न चैतन्य प्रमातृचेतन्य, प्रमाता इस प्रकार के शब्दों के द्वारा कहा जाता है।

चैतन्यं तु एकमेव। कथं तर्हि तस्य त्रैविध्यम्।

चैतन्य तो एक ही फिर उसके तीन प्रकार कैसे?

उपाधि भेद से चैतन्य के भेदों की कल्पना की जाती है। जैसे घटावच्छिन्न आकाश घटाकाश कहलाता है, मठावच्छिन्न आकाश मठाकाश कहलाता है। जब घट मठ से बाहर होता है तब दो अवच्छिन्न आकाश प्रतीत होते हैं। यहाँ आकाश में कोई भेद नहीं है, वहाँ केवल कल्पित भेद है। आकाश की उपाधि घटादि जब नष्ट होते हैं तो एक ही आकाश अवशिष्ट रहता है।

ध्यान दें:

इसी प्रकार अन्तः करण की वृत्ति विषय आदि उपाधियों का चैतन्य के साथ सम्बन्ध होने से यह अन्तः करण अवच्छिन्न चैतन्य .वृत्यवच्छिन्न चैतन्य, विषयावच्छिन्न चैतन्य, इस प्रकार से व्यवहार उत्पन्न होता है। चैतन्य के भेद कल्पित होते हैं न की वास्तिविक। चैतन्य में स्वगत सजातीय तथा विजातीय भेद नहीं होते हैं यह सिद्धान्त है।

चैतन्य के साथ सम्बन्ध होने से चैतन्य में स्वयं के धर्म का आरोप करके चैतन्य में जो भेद उत्पन्न करती है वह उपाधि होती है।

शुक्तिविषयक अज्ञान दूरदेश में स्थित शुक्ति के विशेषांश शुक्तित्व का आवरण करता है। उस दोष से अज्ञान रजत्व में विपरिणत होता है। अज्ञान तथा शुक्ति सामान्याशं में अभेद से आश्रित होते हैं। तब शुक्तित्व से वह प्रकाशित नहीं होता है। लेकिन रजतत्व से प्रकाशित होता है।

इसी प्रकार विश्व व्यापक अज्ञान भी चैतन्य का आवरण करता है। उस दोष से अज्ञान घटादि रूपों में परिणित होते हैं। अज्ञान चैतन्य में अभेद से आश्रित होता है। तब चैतन्य चैतन्यत्व प्रकाशित नहीं होता है। लेकिन घटादि रूप से प्रकाशित नहीं होता है।

जब अज्ञान का परिणाम घटपटादि विषय चैतन्य में अभेद से आश्रित होता है तब वह विषय चैतन्य की उपाधि अथवा अवच्छेदक होता है। लेकिन तब वह विषय घटावच्छिन्न चैतन्य, तथा पटावच्छिन्नचैतन्य इत्यादि रूप से अभिन्न होने पर भी चैतन्य में काल्पनिक भेद को जन्म देता है।

इस प्रकार से तीन प्रकार का चैतन्य प्रतिपादित किया गया है।

पाठगत प्रश्न 6.2

1. प्रत्यक्ष प्रमा क्या होती है?
2. सन्निकर्ष क्या होता है?
3. व्यापार का लक्षण क्या होता है?
4. इन्द्रिय का करणत्व में कौन सा व्यापार होता है?
5. करण का क्या लक्षण है?
6. वृत्त्यात्मक ज्ञान किसका धर्म है?
7. काम धृति तथा इच्छा इत्यादि किसके धर्म होते हैं?
8. ज्ञानेन्द्रयाँ कितनी तथा कौन-कौन सी होती हैं?
9. मन इन्द्रिय हैं या नहीं?
10. मन के अनिन्द्रियत्व में श्रुति का क्या प्रमाण है?
11. ईश्वर का अनुमान किया जाता है अथवा नहीं?
12. प्रत्यभिज्ञा किसे कहते हैं?
13. साक्षी किसे कहते हैं?
14. प्रमाण चैतन्य क्या होता है?
15. प्रमातृ चैतन्य क्या होता है?

ध्यान दें:

6.3.1) ज्ञान प्रत्यक्ष का प्रयोजक

इसके बाद ज्ञानगत प्रत्यक्ष का प्रयोजक क्या होता है इसका आलोचन किया जा रहा है।

प्रमाण चैतन्य का विषय अवच्छिन्न चैतन्य के साथ भेद ही ज्ञानगत प्रत्यक्ष का प्रयोजक है। जिसका विषयावच्छिन्न चैतन्य तथा अभिन्न प्रमाण चैतन्यत्व इस प्रकार से अर्थ होता है। अर्थात् जब विषयावच्छिन्न चैतन्य का प्रमाण चैतन्य से अभेद होता है तब वहाँ जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है।

वह इस प्रकार से घट मठ से बाहर होता है, तब घटावच्छिन्न आकाश मठावच्छिन्न आकाश से भिन्न होता है। जब घट को मठ में स्थापित किया जाता है तब घटाकाश मठकाश से भिन्न नहीं होता है। अर्थात् जो घटाकाश होता है वह ही मठाकाश होता है। भले ही जो मठाकाश है वह ही घटाकाश हो ऐसा नहीं है। फिर भी सभी घटाकाश मठाकाश ही होते हैं। घट तथा मठ आकाश की दो उपाधियाँ होती हैं। तब आकाश ही उपहित कहलाता है अथवा उपधेय भी कहलाता है। दोनों उपाधियाँ एकदेश होने से उपहित का (उपधेय का) आकाश से अभेद होता है।

ऐसे ही जब विषय चैतन्य तथा प्रमाण चैतन्य एकदेश में होते है तब उपहित दोनों चैतन्य भिन्न नहीं होते है, उन दोनों चेतन्यों में अभेद ही होता है।

जब विषय बाह्य होते हैं तब उस विषय के साथ इन्द्रिय का सन्निकर्ष होता है तो वृत्ति विषयदेश में चली जाती है। जब वृत्ति विषयादेश जाती है तब दोनों उपाधियाँ एकदेशस्य हो जाती हैं।

यह घट है। इस प्रत्यक्ष ज्ञानस्थल में विषय घट होता है तथा वह बाह्य एवं अन्यदेशस्य होता है। इन्द्रिय का अर्थ के साथ सन्निकर्ष होने से अन्तः करण इन्द्रिय द्वार से बाहर जाता है, घटदेशस्य होता है। तथा उसका घटाकार के साथ परिणाम होता है। तब घटाकार वृत्ति होता है। उस देश में स्थित यह वृत्ति ही प्रमाण होती है। तथा वह अवच्छिन्न चैतन्य ही प्रमाण चैतन्य होता है। जब घटाकार वृत्ति होती है तब घट अवच्छिन्न चैतन्य का प्रमाण चैतन्य से अभेद हो जाता है। तब यह घट है इस प्रकार का घट विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है। घट मठ में है अर्थात् दोनों का एकदेशस्थत्व है जिससे घठाकाश तथा मठाकाश में ऐक्य होता है। यह घट है, इस ज्ञान स्थल में घट चैतन्य की उपाधि है तथा वृत्ति चैतन्य की उपाधि है। जब वृत्ति घटाकार होती है घट वृत्ति में होता है अर्थात् घट वृत्ति का एकदेशस्थत्व है । तब उपधय दोनों चैतन्य का अभेद होता है। घट भूतल पर होता है, वृत्ति भूतल में नहीं होती है, वृत्ति घटाकार घट में आश्रित होती है। इसलिए दोनो उपाधियाँ भले ही एकदेश में नहीं है। फिर भी वृत्ति विषयाकार होती है। तब विषय तथा वृत्ति दोनों उपाधियाँ भी एकदेशस्य है इस प्रकार का व्यवहार किया जाता है।

अनुमितस्थल में प्रत्यक्षत्व होता है

पर्वत के वह्निमान धूमान् इत्यादि अनुमान स्थल होते हैं। वह पर्वत वह्निमान है इस प्रकार का अनुमान उत्पन्न होता है। अनुमान से परोक्ष ज्ञान होता है न की प्रत्यक्ष ज्ञान। यहाँ पर्वत, वह्नि तथा उन दोनों में सम्बन्ध यह भासित होता है। भले ही पर्वत का इन्द्रिय के साथ सन्निकर्ष होता है तथा वह्नि का नहीं होता है। वृत्ति के बाहर गमन का हेतु ही इन्द्रिय का अर्थ के साथ सन्निकर्ष है। वह सन्निकर्ष पर्वत के साथ है अग्नि के साथ नहीं है। इसलिए वृत्ति पर्वताकार होती है वह्नियाकार नहीं होती है। विषय ही पर्वत तथा वह उपाधि है। वृत्ति भी उपाधि है। दोनों उपाधियाँ एकदेश में होती है। इसलिए उपधेय तथा चैतन्य में अभेद होता है। लेकिन वह्निस्थल में एकदेशस्थत्व नहीं होता है। इसलिए पर्वत वह्निमान्

ध्यान दें:

है। इस स्थल में पर्वतविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है, तथा वह्निविषयक परोक्षज्ञान भी उत्पन्न होता है।

ज्ञानों का ही प्रत्यक्ष तथा उनके विषयों का प्रत्यक्षत्व तथा परोक्षत्व होता है। प्रत्यक्ष, अनुमान,उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, तथा अनुपलब्धि ये छः प्रकार के ज्ञान वेदान्त के मत में होते हैं। उनके कारण भी छः प्रकार के होते हैं। वे हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम (शब्द), अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि।

सभी ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा जाने जाते हैं। अर्थात् इनके ज्ञान विषयक ज्ञान प्रत्यक्ष होते हैं जो साक्षात् आखों द्वारा जाने जाते हैं। परन्तु उनमें प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय घटादि भी प्रत्यक्ष ही होते हैं। अनुमान में आसित वह्नियादि विषय प्रत्यक्ष नहीं होते हैं। वह तो अनुमेय तथा परोक्ष होते हैं। इसी प्रकार अन्य ज्ञानों में भी समझना चाहिए। इसलिए जब घटादि विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है तब वह ज्ञान घटांश में प्रत्यक्ष कहा जाता है। ज्ञान विषयक ज्ञान हमेशा प्रत्यक्ष होता है लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय ही प्रत्यक्ष तथा अन्यों का विषय परोक्ष कहलाता है।

प्रमेय

जब ज्ञान उत्पन्न होता है, तब कौन से विषय उत्पन्न होते हैं तथा कौन-कौन से प्रमेय होते तो विषय के सौकर्य के लिए यह कह सकते हैं कि

- बाह्यविषय अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञेय विषय द्रव्य होते हैं तथा उनके गुण, मूर्तद्रव्यगत क्रिया, जाति, उपाधि रूप धर्म आदि होते हैं।
- अन्तः करण में विद्यमान धर्म जैसे सुख दुःख धर्म अधर्म इत्यादि होते हैं।
- अन्तः करण भी स्वयं विषय होता है तथा अन्तः करण में जो वृत्ति जन्म लेती है वह भी विषय होती है।
- प्रतिभासित रजतादिक। अभाव।
- साक्षी। आत्मा।

ये विषय जानने चाहिए। इनमें कौन प्रत्यक्ष होता है, कौन परोक्ष होता है, इस प्रकार का विवेचन भी प्रचलित है।

सुखादि विषय प्रत्यक्ष होते हैं।

सुखादिक प्रातिभासिकर जतादिक जो जब विषय होते हैं तब कैसे प्रत्यक्ष उत्पन्न होते हैं?

सुखादिक तो अन्तः करण के धर्म ही है। आन्तर विषय नहीं हैं और न बाह्य विषय हैं। इसलिए इन्द्रिय द्वारा वृत्ति का बाहर गमन आवश्यक नहीं है। इसलिए विषय तदाकार वृत्ति रूप में होते है तथा सदा एकदेश में रहते है। उससे तदवच्छिन्न तथा चैतन्य में अभेद होता है। इसलिए सुखादिविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। सुखावच्छिन्न चैतन्य तथा सुखाकार वृत्यवच्छिन्न चैतन्य सदा एकदेश में अवस्थित रहता है। इसलिए सुखादियों का सदा प्रत्यक्ष ज्ञान ही उत्पन्न होता है। कभी भी परोक्ष ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। स्वागत सुख स्मृति में ही अतिव्याप्ति होती है।

जब स्व अतीत सुख की स्मृति होती है वहाँ सुख विषय होता है। वह अतीत होता है लेकिन अन्तः करण ही उसका देश होता है। सुखाकार स्मृतिरूप वृत्ति उदय होती है। वृत्तिदेश भी अन्तः करण ही होता है। इसलिए सुखात्मक उपाधि तथा वृत्यात्मक उपाधि एकदेश में ही होती है। इसलिए सुखावच्छिन्न चैतन्य

ध्यान दें:

का तदाकारवृत्यवच्छिन्न चैतन्य से हमेशा अभेद होता है। उससे अतीतसुख की स्मृति भी प्रत्यक्ष ज्ञान है इस प्रकार की आपत्ति होती है।

सुख तथा स्मृति तो प्रत्यक्षज्ञान होता है यह सिद्धान्त सर्वत्र प्रचलित है। इसलिए अतिव्याप्ति के वारण के लिए विषयका वर्तमानत्व विशेषण होना चाहिए। अर्थ जब विषयाकार वृत्ति उदय होती है तब वह विषय यदि वर्तमान हो तो तद्विषयकज्ञान प्रत्यक्ष ही होता है यह अङ्गीकार करना चाहिए।

सुख स्मृति स्थल में भले ही सुखात्मक उपाधि होती है तथा कुछ स्मृत्यात्मक उपाधि एकदेश में होती है फिर भी वह सुखा अतीत है वर्तमान नहीं है। इसलिए अतीत सुख विषयक स्मृति में प्रत्यक्षत्व की आपत्ति नहीं होती है।

इन सब से यह सिद्ध होता है कि यदि विषय वर्तमान है लेकिन दो उपाधियाँ एकदेश में है तो उपधेय चैतन्य का अभेद होता है तो ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् प्रमाण चैतन्य का वर्तमान विषय चैतन्य से अभेद होता है तथा प्रत्यक्षत्व प्रयोजक होता है।

स्वगत धर्माधर्म के ज्ञान में अतिव्याप्ति होती है

वेद विहित कर्म से कोई संस्कार विशेष उत्पन्न होता है वह धर्म तथा पुण्य इस प्रकार से कहलाता है। वह अन्त: करण में रुकता है।

जब चैत्र धार्मिक मैत्र से कहता है कि तुम धार्मिक हो। तब चैत्र का वाक्य मैत्र का स्वधर्म विषयक ज्ञान उत्पन्न करता है। उस ज्ञान में विषय धर्म होता है। वह धर्म मैत्र के अन्त: करण में होता है। इस प्रकार से वाक्य श्रवण मात्र से धर्माकार वृत्ति मैत्र के अन्त: करण में उत्पन्न होती है। इसलिए अन्त: करण धर्मदेश होता है। तथा उसका वृत्तिदेश भी अन्त: करण ही होता है। क्योंकि धर्म अन्त: करण में होता है तथा धर्म में वर्तमानत्व है। इसलिए प्रमाण चैतन्य का वर्तमान चैतन्य से अभेद यहाँ होता है। यहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान का प्रोक्त प्रयोजक है। उस धर्म के विषय में इस ज्ञान में प्रत्यक्षत्व आपत्ति होती है।

भले ही धर्म तथा अधर्म अन्त: करण में ही होते हैं। फिर भी उसके विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान कभी किसी मनुष्य में उत्पन्न नहीं होता है। धर्म तथा अधर्म अनुमान एवं आगम से ही जाने जाते हैं। न की प्रत्यक्ष प्रमाण से।

अत: अतिव्याप्ति के निवारण के लिए योग्यत्व विषय का विशेषण देना चाहिए।अर्थात् यदि योग्य विषय वर्तमान है तो कुछ दो उपाधियाँ एकदेश में होती हैं। तो उपधेय चैतन्य में अभेद होता है जिससे ज्ञान भी प्रत्यक्ष ही कहलाता है। अर्थात् प्रमाण चैतन्य का योग्य वर्तमान विषय चैतन्य से अभेद होता है जो प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक होता है।

सुख तथा दु:ख अन्त: करण में होते हैं। धर्म तथा अधर्म भी अन्त: करण में होते है। फिर भी सुख तथा दु:ख में प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। धर्म तथा अधर्म तो प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय है ही नहीं। इस प्रकार से यहाँ पर पार्थक्य का क्या कारण है? तब कहते हैं-

फलबलकल्प्य स्वभाव विशेष प्रयोजक होता है। फल यहाँ पर प्रत्यक्ष ज्ञान तथा अनुमान ज्ञान है। वहाँ सुख का प्रत्यक्ष होता है। इसलिए सुख में प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक है। प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक उद्भूतत्व है। धर्म का तथा अधर्म का प्रत्यक्ष नहीं होता है। इसलिए वहाँ पर प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक उद्भूतत्व नहीं होता है। यह ही स्वभाव विशेष होता है जो कोई उद्भूतत्व होता है तथा कोई नहीं होता है। उद्भूतत्व तो लौकिक विषयात्व अथवा प्रत्यक्षत्व प्रयोजक धर्म विशेष होता है। अर्थात तादृश धर्म विशेष होता है जिससे उस धर्म का विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है।

ध्यान दें:

ज्ञानगत प्रत्यक्षत्व के विषय में यह निर्गलित अर्थ है कि- तत्तत्प्रत्यक्ष-योग्य-वर्तमान-विषयावच्छिन्नचैतन्याभिन्नत्वं तत्तदाकारवृत्त्यवच्छिन्नज्ञानस्य तत्तदंशे प्रत्यक्षत्वम्।

चाक्षुष प्रत्यक्ष योग्य वर्तमान घट का विषय होता है, तदवच्छिन्नचैतन्य का घटाकारवृत्यवच्छिन्न चैतन्य से अभेद ही तब उत्पन्न ज्ञान के घटांश में प्रत्यक्षत्व रूप में समन्वित होता है।

पाठगत प्रश्न 6.3

1. वेदान्त मत के अनुसार यह घट है इसका चक्षु से किस प्रकार प्रत्यक्ष होता है?
2. पर्वत् वह्निमान है धुएँ के कारण इस प्रकार के अनुमान स्थल में किसका प्रत्यक्ष होता है?
3. ज्ञान का प्रत्यक्ष, अनुमान अथाव शब्द इस में से कौन-सा होता है?
4. अनुमान प्रत्यक्ष के द्वार जाना जाता है अथवा नहीं?
5. सुख की स्मृति प्रत्यक्ष है अथवा नहीं?
6. पुण्य का कारण क्या है?
7. पाप किसे कहते हैं?
8. धर्म प्रत्यक्ष के द्वारा जाना जाता है अथवा नहीं?
9. अधर्म प्रत्यक्ष के द्वारा जाना जाता है अथवा नहीं?
10. ज्ञानगत प्रत्यक्ष का निर्गलित्व लक्षण क्या है?

6.3.2) विषयगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक

इससे पूर्व ज्ञानगत प्रत्यक्ष क्या होता है इसका आलोचन विस्तार पूर्वक किया गया। इसके बाद विषयग प्रत्यक्ष क्या होता है इसका विस्तार पूर्वक उपस्थापन करते हैं।

प्रमात्वभिन्नत्व ही विषय का प्रत्यक्ष कहलाता है। प्रमात्वभिन्नत्व इसका अर्थ हैं कि प्रमातृसतात्व के अतिरिक्त सत्ताकत्व का अभाव। प्रमातृसत्ता ही प्रमातृचैतन्य की सत्ता होती है। प्रमाता की जो सत्ता होती है उससे अतिरिक्त सत्ता होती है जिसकी वह प्रमातृसत्तारिक्त सत्ताक: कहलाता है। तत्व की दृष्टि से वह प्रमातृसत्तारिक्तसत्तात्व धर्म युक्त होता है। उस प्रकार का प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्व का अभाव ही प्रमातृ भेद होता है। यह भाव जिस विषय में होता है वह विषय प्रत्यक्ष कहलाता है।

विवरण

वेदान्त के मत में सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म में अध्यस्त है अविद्या से उपहित घटादियों विषयों से अवच्छिन्न जो चैतन्य है उसमें सभी प्रपञ्च अध्यस्त है। वहाँ अधिष्ठान चैतन्य होता है। अध्यस्त घटादि विषय होते हैं। सभी अध्यस्त विषय मिथ्या होते हैं। इसलिए उसकी स्वयं की कोई भी चैतन्य से भिन्न सत्ता नहीं होती है। अधिष्ठान चैतन्य अध्यस्तन की सत्ता होती है। अविद्या से उपहित घटावच्छिन्न चैतन्य ही घट का अधिष्ठान है। वह चैतन्य की सत्ता ही घठ की सत्ता है। उससे भिन्न घट की कोई भी सत्ता अङ्गीकार नहीं की जाती है।

जब अन्त: करण घटाकरा होता है। तब जैसे प्रमाणावच्छिन्न चैतन्य विषयावच्छिन्न चैतन्य

ध्यान दें:

एकदेशस्य होते हैं वैसे ही अन्त: करणावच्छिन्न चैतन्य अर्थात् प्रमातृचैतन्य भी विषय देशस्थ होता है। इस प्रकार से विषय चैतन्य प्रमाण चैतन्य, प्रमाण चैतन्य, तथा प्रमातृ चैतन्य एकदेशस्थ होते हैं। तब इन तीनों चैतन्यों का ऐक्य होता है।

इस प्रकार विषय की सत्ता ही वह अधिष्ठान होता है, जो वह विषयावच्छिन्न चैतन्य होता है। प्रमातृ चैतन्य का विषय चैतन्य से ऐक्य होता है। यहाँ प्रमातृ चैतन्य की जो सत्ता है वह ही सत्ता विषयावच्छिन्न चैतन्य की होती है। विषय की सत्ता ही विषयावच्छिन्न चैतन्य होता है। इसलिए प्रमातृ सत्ता से अतिरिक्त सत्ता विषय की नहीं होती है। इस प्रकार से प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्व भाव ही विषय में होता है। अत: उस प्रकार का विषय ही प्रत्यक्ष कहलाता है।

समन्वय

घट विषय चाक्षुषप्रत्यक्ष स्थल में घटावच्छिन्न चैतन्य की जो सत्ता होती है वह सत्ता घट की सत्ता कहलाती है। जब चक्षु तथा घट का सन्निकर्ष होता है। तब अन्त: करण में घट देखा जाता है जो घटाकार वृत्ति युक्त होता है। तब घटाकारचैतन्य घटाकारवृत्यवच्छिन्न प्रमाण चैतन्य तथा प्रमातृचैतन्य एकदेशस्य होता है, लेकिन उनमें अभेद होता है। वहाँ घट की सत्ता ही घटावच्छिन्न चैतन्य की सत्ता होती है तथा घटावच्छिन्न चैतन्य एवं प्रमातृचैतन्य एक ही होता है। इसलिए प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्व का अभाव ही घट का होता है, इस प्रकार से घट ही प्रत्यक्ष विषय कहलात है। प्रत्यक्ष विषय ही अपरोक्ष विषय भी कहलाता है।

जब पर्वत वह्निमान इत्यादि अनुमान उत्पन्न होते हैं तब इन्द्रिय का पर्वत से सन्निकर्ष होता है न की वह्नि के साथ होता है। इसलिए अन्त: करण पर्वतेदेश में चला जाता है। न की वह्नि देश में जाता है। पर्वताकार वृत्ति जन्म लेती है वह्नियाकार उत्पन्न नहीं होती है। अत: प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्वाभाव पर्वत में होता है, वह्नि में नहीं होता है, जिससे पर्वत ही प्रत्यक्ष विषय कहलाता है, वह्नि प्रत्यक्ष विषय नहीं होती है।

धर्मादियों का प्रत्यक्ष विषयत्व निवारण

चैत्र धर्मवान है तथा सुखी है इत्यादि अनुमान स्थलों में धर्म अनुमान से ज्ञान होता है। तब धर्म की सत्ता धर्माविच्छिन्न चैतन्य ही होती है। अन्त: करण की कहीं भी जाने की आवश्यक्ता नहीं होती है, क्योंकि धर्म ही अन्त: करण में रहता है। अत: प्रमातृचैतन्य की सत्ता ही धर्मावच्छिन्न चैतन्य की सत्ता होती है। इसलिए ही प्रमातृ सत्ता के अतिरिक्त सत्ताकत्व भाव धर्म में होता है। उससे धर्म की प्रत्यक्षत्व आपत्ति होती है। धर्म कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होता है। अत: उसके वारण के लिए योग्यत्व ही विषय का विशेषण देना चाहिए। अर्थात् प्रमातृसत्ता से अतिरिक्ति सत्ताकत्वाभाव यदि प्रत्यक्ष योग्य विषय में हो तो वह विषय प्रत्यक्ष ही जानना चाहिए। इस प्रकार धर्म प्रत्यक्ष योग्य नहीं होता है। अत: प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्वाभाव धर्म में होता है। फिर भी प्रत्यक्षयोग्यत्व धर्म मे नहीं होता है तथा न यहाँ पर अतिव्याप्ति होती है।

अतीत सुख का अनुमान होता है तो सुखाकार वृत्ति उत्पन्न होती है। सुख अन्त: करण में तथा वृत्ति भी अन्त: करण में होती है। तब प्रमातृचैतन्य का विषय चैतन्य से अभेद होता है। तब दोनों की सत्ता भिन्न नहीं होती है। और प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्त्वाभाव कुछ प्रत्यय योगत्व विषय में सुख होता है, इस प्रकार से अतिव्याप्ति होती है। उसके वारण के लिए वर्तमानत्व विषय का विशेषण देना चाहिए। प्रत्यक्षत्ववर्तमानत्व समानाधिकरण होते है तथा प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्वाभाव विषयगत प्रत्यक्ष का प्रयोजक होता है। अतीत के सुख में वर्तमानत्व के अभाव से अतिव्याप्ति नहीं होती है।

ध्यान दें:

नीला घट इस प्रत्यक्ष स्थल में घटगत नीलत्व प्रत्यक्ष होता है। क्योंकि रूप में प्रत्यक्षयोग्यत्व, वर्तमानत्व तथा प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्वाभाव होता है। जिस घट मे घट नीलत्व होता है उस घट में ही घट का परिमाणादिक भाव भी होता है। नीलत्व और परिमाण घट में अर्थात एकदेश में होते हैं। अत: नीलत्वावच्छिन्न चैतन्य परिणामावच्छिन्न चैतन्य से अभेद है। अर्थात् नीलत्वावच्छिन्न चैतन्य का प्रमातृचैतन्य से अभेद होता है। नीलत्व की सत्ता तो नीलत्वावच्छिन्न चैतन्य की सत्ता होती है। उसीप्रकार परिमाण की सत्ता भी परिमाणावच्छिन्न चैतन्य की सत्ता ही है। इस प्रकार से परिमाण में वर्तमानत्व प्रत्यक्षयोग्यत्व तथा प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्वाभाव होता है। अत: परिमाण की प्रत्यक्षत्वापत्ति होती है। किन्तु जब रूप का प्रत्यक्ष होता है तब परिमाण का प्रत्यक्षत्व अङ्गीकार नहीं किया जाता है। अतिव्याप्ति के वारण के लिए तत्तदाकार वृत्त्युपहितत्व प्रमातृचैतन्य का विशेषण निवेश किया जाता है। इस प्रकार से प्रत्यक्ष योग्यत्व वर्तमानत्व तथा तत्तदाकारवृत्ति उपहित प्रमातृसत्ता के अतिरक्त सत्ताकत्व अभाव जिस विषय में होता है वह विषय प्रत्यक्ष होता है, इस प्रकार से समझना चाहिए। अर्थात् जिस विषय में प्रत्यक्षयोग्यत्व वर्तमानत्व होता है होता है तथा तदाकार ही जो वृत्ति होती है, तदुपहित जो प्रमातृचैतन्य उसका सत्ताकत्व अतिरिक्त सत्ताकत्वाभाव भी उस विषय मे ही यदि हो तो वह विषय प्रत्यक्ष होता है।

जब नीला घट इस प्रकार से चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है तब चक्षु का नीलत्व के साथ संयुक्ततादात्म्यसम्बन्ध उत्पन्न होता है। तब नीलत्व चक्षुष की और उन दोनों के सम्बन्ध की स्वभाव वश नीलत्वाकार वृत्ति उत्पन्न होती है, गन्धादि आकार वाली वृत्ति उत्पन्न नहीं होती है। जब नीला घट इस प्रकार का ज्ञान होता है, तब नीला घट एक महान घट है इस प्रकार का ज्ञान भी सम्भव होता है। एक ही ज्ञान में एक ही ज्ञान में नीलत्व महत्व तथा एकत्व भासित नहीं होते हैं। अत: परिणामाकार वृत्ति सम्भव होती है। परन्तु यदि प्रमाता केवल नील घट ही अभिलाषा की इच्छा करता है तब परिणाम विषय नहीं होता है। जब परिणाम विषय नहीं होता है तब यह प्रश्न उत्पन्न होता है। वहाँ पर नीलत्व के आकारवाली वृत्ति से प्रमातृचैतन्य उपहित होता है। अत: नीलत्व प्रत्यक्षयोग्यत्व वर्तमानत्व नीलत्वाकार वृत्ति उपहित प्रमातृसत्तारिक्तसत्ताकत्व भाव होता है। इसलिए नीलत्व प्रत्यक्ष विषय ही होता है। परिणामाकार वृत्ति नहीं है। इसलिए परिणामाकार वृत्ति से उपहित चैतन्य भी नहीं है। इसलिए भले ही परिणाम में प्रत्यक्षयोग्यत्व वर्तमानत्व है फिर भी परिणामाकार वृत्ति उपहित प्रमातृसत्तारिक्त सत्ताकत्वाभाव नहीं है तथा परिमाण प्रत्यक्ष विषय भी नहीं है।

न्याय के मत में यह घट है इस प्रकार का प्रथम ज्ञान व्यवसाय कहलाता है। व्यवसायिक विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान अनुव्यवसाय कहलाता है। लेकिन वेदान्ति व्यवसाय के ज्ञान को अनुव्यवसाय के द्वारा अङ्गीकार नहीं करते हैं। इस प्रथम ज्ञान ही प्रमता प्रमिते तथा प्रमेय तीनों रूपो में भासित होता है। जब घट ज्ञान में भासित होता है तब घटाकार वृत्ति भी उसी ज्ञान में भासित होती है।

जब घट विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है तब घटाकार वृत्ति विषयक प्रत्यक्ष भी उत्पन्न होता है। परन्तु घट के ज्ञान के लिए घटाकार वृत्ति तथा वृत्ति के ज्ञान के लिए वृत्याकार दूसरी वृत्ति होती है। तथा द्वितीय वृत्ति के ज्ञान के लिए तीसरी वृत्ति इस प्रकार से नहीं होती है। अर्थात् द्वितीय तृतीयादि वृत्तियाँ उत्पन्न नहीं होती हैं। लेकिन घटाकार स्वयं विषयों को जन्म देती है। तथा घटाकार वृत्ति ही स्वयं अभी स्वयं का विषय होती है। इसलिए वृत्युपहित प्रमातृसत्तारिक्त उसकी सत्ता नहीं होती है। अर्थात् उसमें वृत्यपहित प्रमातृसत्तारिक्त सत्ताकत्व भाव होता है य इसी प्रकार उसमें वर्तमात्व तथा प्रत्यक्षयोग्यत्व भी होता है। वह वृत्ति ही प्रत्यक्ष विषय है।

1. अन्त:करणम, 2. तद्धर्म सुखादि, 3. वृत्ति, 4. प्रातिभासिकरजतादिक और 5. साक्षी ये इस प्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान को उत्पन्न करते हैं। लेकिन जैसे घटादि प्रत्यक्षस्थल में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से अन्त: करण विषय देश में चला जाता है तब विषयाकार प्रमाण वृत्ति उत्पन्न होती है। तथा इन सभी विषयों में

ध्यान दें:

नहीं होती है। इनका किसी भी इन्द्रिय के साथ सन्निकर्ष नहीं होता है। इसलिए तदाकार प्रमाणवृत्ति नहीं होती है।

विषय अज्ञान से आवृत्त होता है। जो विषय अज्ञान से आवृत्त होता है उस विषय में ही संशय विपर्यय आदि उत्पन्न होते है। विषय के ज्ञान के लिए इस प्रकार के अज्ञान का भङ्ग आवश्यक होता है तथा साक्षी चैतन्य के साथ सम्बन्ध भी आवश्यक होता है। इस प्रकार आवरण भङ्ग तथा साक्षी चैतन्य के साथ सम्बन्ध ये दोनों एक साथ कैसे सम्भव है। जब इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष होता है तब अन्तः करण इन्द्रियों के द्वारा विषय देश में चला जाता है तथा विषयाकार प्रमाणवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। तब दोनों चैतन्य में अभेद होता है जिससे आवरण भङ्ग हो जाता है। और प्रमाण वृत्ति के द्वारा साक्षी चैतन्य का विषय के साथ सम्बन्ध भी होता है। इस प्रकार आवरण भङ्ग साक्षी सम्बन्ध को सम्पादित करता है।

जो विषय अज्ञान से आवृत नहीं है तथ जिनका साक्षी चैतन्य से सम्बन्ध है। उन दोनों के प्रकाशन के लिए कोई भी प्रमाण वृत्ति अपेक्षित नहीं है। वे विषय है 1. अन्तःकरणम, 2. तद्धर्म सुखादि, 3. वृत्ति तथा प्रातिभासिक रजतादि, इन विषयों में किसी का भी संशय विपर्ययादि नहीं होते हैं। इसलिए ये अज्ञान से आवृत नहीं होते हैं। लेकिन ये साक्षी चैतन्य में आश्रित होते है जिससे इनका साक्षी के साथ साक्षात् सम्बन्ध भी होता है। इनके ज्ञान के लिए जब तक साक्षी चैतन्य विषयाकार नहीं होता है तब तक प्रत्यक्ष उत्पन्न नहीं होता है। साक्षी चैतन्य निराकार होता है। उसका सुखादि आकारत्व स्वयं का सम्भव नहीं होता है। अतः चैतन्य के चैतन्य के विषय आकारत्व के लिए अविद्या वृत्ति उत्पन्न होती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रमाण वृत्ति तथा अविद्यावृत्ति भिन्न-भिन्न होती हैं तथा अविद्यावृत्ति अन्तः करणवृत्ति नहीं होती है।

प्रत्यक्ष योग्यत्व वर्तमात्व तत्तदाकारवृत्ति उपहित प्रमातृसत्तारिक्त सत्ता भाव जिस विषय में होता है वह विषय प्रत्यक्ष ही होता है। ऐसा कहा जा चुका है। सुखादि वर्तमान प्रत्यक्ष योग्य होते है लेकिन तत्तदाकार अविद्या वृत्ति भी उत्पन्न होती है। अतः तत्तदाकारवृत्ति उपहित प्रमातृ सत्ता के अतिरक्त उनकी सत्ता नहीं होती है। यह लक्षण समन्वय होता है। भले ही सुखादि के लिए इन्द्रिय के द्वारा बाहर अन्तः करण की बाहर गमन के अभाव से प्रमाण वृत्ति उत्पन्न नहीं होती है फिर भी अविद्यावृत्ति उत्पन्न होती है।

कुछ विषय साक्षी कहलाते हैं तथा कुछ विषय केवल साक्षी कहलाते हैं। जिनकी इन्द्रिय के सन्निकर्ष के द्वारा तत्तदाकारवृत्ति होती है वह वह प्रमाणवृत्ति होती है। जिनके प्रकाशन के लिए प्रमाण वृत्ति अपेक्षित है अथवा अनुमानादिक व्यापार अपेक्षित है वे साक्षीवेद्य कहलाते है। जिनके प्रकाशन के लिए प्रमाण वृत्ति अपक्षित नहीं है तथा अनुमानादिक प्रमाणव्यापार भी अपेक्षित नहीं है, केवल अविद्यावृत्ति ही अपेक्षित है वे केवलसाक्षीवेद्य कहलाते है।

वहाँ पर यह कहा गया है कि- स्वाकारवृत्त्युपहित, प्रमातृ, चैतन्य, सत्तातिरिक्त, सत्ताकत्वशून्यत्वे सति योग्यत्वे सति वर्तमानत्वं विषयगतं प्रत्यक्षत्वम् (अर्थात्- स्वाकारवृत्त्युपहित प्रमातृ चैतन्य सत्तातिरिक्त सत्ताकत्व शून्यत्व होने पर तथा योग्यत्व होने पर वर्तमानत्व विषयगत प्रत्यक्षत्व होता है।) इस प्रकार से यहाँ पर विषय होता है।

इस प्रकार से ज्ञानगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक क्या होता है तथा विषयगत का, प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक क्या होता है इसका अति विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है।

पाठगत प्रश्न 6.4

1. जगत् किसमे अध्यस्त होता है?
2. वेदान्त के मत में अनुव्यवसाय अङ्गीकार किया गया है अथवा नहीं?
3. सुख अज्ञान वृत्ति है अथवा नहीं?
4. साक्षी वेद्या कौन-कौन होते हैं?
5. केवल साक्षी वैद्य कौन-कौन होते हैं?
6. विषयगत प्रत्यक्षत्व प्रयोजक का निष्कृष्ट लक्षण क्या है?

पाठ सार

प्रमा के छः भेद होते हैं प्रत्यक्ष प्रमा, अनुमिति, उपमिति, शाब्दी, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि इनमें से प्रत्यक्ष प्रमा ही इस पाठ में विस्तार पूर्व बताई गयी है। सावयव अन्तः करण चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा बह जाने पर विषयाकार होती है। यह घटादि विषयाकार से अन्तः करण का परिणाम ही वृत्ति कहलाता है। उससे घटादि द्रव्य जाने जाते हैं। द्रव्यवृत्ति गुणों का द्रव्य से अत्यन्त भेद नहीं होता है। अतः जिस प्रकार से द्रव्याकार वृत्ति होती है वैसे ही गुणादि आकार वृत्ति भी होती है। अन्तः करण की अवस्था विशेष जहाँ अस्तित्व आदि व्यवहार का प्रतिबन्धक अज्ञान का निवारण होता है वह अवस्था ही वृत्ति कहलाती है। जब घटादि विषयाकार वृत्ति होती है तब घटादि विषय चैतन्य में अभिव्यक्त होता है। यह अभिव्यक्त चैतन्य ही प्रत्यक्ष प्रमा है न की उपाधि रहित चैतन्य।

जिस वृत्ति के द्वारा विषय चैतन्य अभिव्यक्त होता है उस वृत्ति का इन्द्रिय के विषय से जो सम्बन्ध उत्पन्न होता है वह सम्बन्ध सन्निकर्ष कहलाता है। इन्द्रिय ही सन्निकर्षात्मक व्यापार के समान प्रमा के प्रति असाधारण करण रूप में होती है, इस प्रकार से इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमा का करण सिद्ध होती है।

वृत्यभिव्यक्त चैतन्य प्रत्यक्ष प्रमा कहलाता है, भले ही चैतन्य उत्पन्न नहीं होता है फिर भी उसकी अवच्छेदवृत्ति उत्पन्न होती है। इसलिए तदवच्छिन्न चैतन्य भी जन्य कहलाता है। भले ही ज्ञान चैतन्य ही है फिर भी अध्यवसात वृत्ति ही ज्ञान कहलाती है। इस प्रकार का व्यवहार होता है।

ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म इत्यादि अन्तः करण के धर्म होता है। जहाँ 'मैं सुखी हूँ' इस प्रकार का सुख आत्म धर्म प्रतीत होता है, तब वहाँ कहा जाता है कि   आत्मा के द्वारा अन्तः करण का ऐक्याध्यास होता है। तब आत्मा में ज्ञान सुखादि का, अन्तः करणधर्मो का आरोप तथा अध्यास होता है। अध्यास वस ही मैं सुखी हूँ इत्यादि अनुभव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार मन इन्द्रिय नहीं होता है। तथा अन्तः करणोपहित चैतन्य साक्षी कहलाता है। साक्षी सदा प्रकाश स्वभाव का होता है।

कोई भी ज्ञान प्रत्यक्ष है यहाँ पर प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक क्या है? कोई भी विषय प्रत्यक्ष है यहाँ पर प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक क्या है? इसी प्रकार ज्ञान गत प्रत्यक्षत्व का तथा विषयगत प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक क्या है इस प्रकार से इन सभी विषयों का इस पाठ में आलोचन किया गया है। प्रमाण चैतन्य का योग्य वर्मतनान चैतन्य से अभेद होता है, प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक सिद्धान्त होता है।

स्वीकारवृत्युपहित प्रमातृ चैतन्य सत्तातिरिक्त सत्ताकत्व शून्यत्व होने पर तथा योग्यत्व होने पर वर्तमानत्व विषयगत प्रत्यक्षत्व होता है। यह सिद्धान्त है-

पाठ-6

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रत्यक्ष प्रमाण

ध्यान दें:

आपने क्या सीखा

- वेदान्त मत में प्रमा के भेदों को जाना,
- छः प्रकार की प्रका में प्रत्यक्ष प्रमा को जाना,
- वृत्ति को जाना,
- इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष को जाना,
- ज्ञान, सुख, दुःख, धर्म तथा अधर्म किसके धर्म हैं यह जाना,
- ज्ञानगत प्रत्यक्ष तथा विषयगत प्रत्यक्ष को जाना,

पाठान्त प्रश्न

1. अन्तःकरण के सावयत्व का प्रतिपादन कीजिए।
2. वृत्ति कैसे उत्पन्न होती है यह लिखिए।
3. गुण क्रिया आदि आकार वाली वृत्ति कैसे उत्पन्न होती है?
4. प्रत्यक्ष प्रमा को विस्तार पूर्वक बताइए।
5. इन्द्रिय के करणत्व का प्रतिपादन कीजिए।
6. वृत्ति में ज्ञानत्व उपचार कैसे होता है।
7. अनादि चैतन्य प्रमा कैसे हैं?
8. ज्ञान आदि मन के धर्म होते हैं इसका प्रतिपादन कीजिए।
9. साक्षिलक्षण का दलकृत्य करके उपस्थापन कीजिए।
10. प्रमाण चैतन्यादि तीन प्रकार के चैतन्य का वर्णन कीजिए।
11. चैतन्य तो एक ही होता है। फिर उसके तीन प्रकार कैसे होते हैं?
12. ज्ञानगत प्रत्यक्षत्व के प्रयोजक का लक्षण दलकृत्य करके उपस्थापित कीजिए।
13. पर्वत वह्निमान है धूएँ से, इत्यादि अनुमानस्थल में किसका प्रत्यक्षत्व है तथा कहाँ से है?
14. सुखादि विषयक प्रत्यक्ष कैसे उत्पन्न होता है?
15. प्रमाण चैतन्य का वर्तमान चैतन्य से अभेद तथा प्रत्यक्ष का प्रयोजक तथा प्रयोजक लक्षण में यदि वर्तमानत्व विषय विशेषण नहीं हो तो क्या आपत्ति होती है।
16. प्रमाण चैतन्य का योग्य वर्तमान विषय चैतन्य से अभेद प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक प्रयोजक लक्षण में योग्यत्व यदि विषय विशेषण नहीं हो तो क्या आपत्ति है?
17. घटावच्छिन्न चैतन्य की सत्ता घट की सत्ता किस प्रकार से हैद्य
18. पर्वत वह्निमान है इत्यादि अनुमान स्थलों मे पर्वत का प्रत्यक्षविषयत्व कैसे नहीं है?
19. सुखादि साक्षिवेद्यों का प्रत्यक्ष कैसे उत्पन्न होता है?

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 6.1

1. प्रमा छः प्रकार की होती है, प्रत्यक्षप्रमा, अनुमिति, उपमिति, शाब्दी, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि।
2. प्रत्यक्ष।
3. प्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में किया जाता है। प्रत्यक्ष प्रमाण, प्रत्यक्ष ज्ञान तथा प्रत्यक्ष विषय।
4. सावयव।
5. अनित्य।
6. उनमें से मन का सृजन हुआ इस प्रकार से।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 6.2

1. प्रत्यक्ष प्रमा चैतन्य है।
2. जिस वृत्ति के द्वारा विषय चैतन्य अभिव्यक्त होता है उस वृत्ति का इन्द्रिय के विषय से जो सम्बन्ध उत्पन्न होता है वह सम्बन्ध सन्निकर्ष कहलाता है।
3. तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वं व्यापारलक्षणम्।
4. सन्निकर्ष
5. व्यापारवान असाधारण कारण करण होता है।
6. अन्त: करण का
7. अन्त: करण का
8. श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं।
9. नहीं
10. मन के अनिन्द्रियत्व में श्रुति का यह प्रमाण है - इन्द्रियेभ्य: परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मन: इति।
11. नहीं
12. तत्तेदन्तावगाहि ज्ञान हि प्रत्यभिज्ञा। कहलाता है।
13. अन्त: करणोपहित चैतन्य साक्षी कहलात है।
14. अन्त: करण की विषयाकार परिणामविशेष जो वृत्ति होती है उस वृत्ति से अवच्छिन्न चैतन्य ही प्रमाण चैतन्य कहलाता है।
15. अन्त: करण का जितना अंश विषयाकार परिणाम नहीं होता है उस अन्त: करण के अवच्छिन्न अंश से चैतन्य अन्त: करणावच्छिन्न चैतन्य, प्रमातृ चैतन्य तथा प्रमाता इस प्रकार के शब्दों के माध्यम से कहा जाता है।

ध्यान दें:

प्रत्यक्ष खण्ड में प्रत्यक्ष प्रमाण

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 6.3

1. यह घट है। चाक्षुषप्रत्यक्षस्थल में घट बाह्य तथ अन्य देशस्य होता है। चक्षुष का घट के साथ संयोगवश अन्तः करण चक्षु के द्वारा बाहर आता है तथा घटदेशस्य होता है अर्थात् उसका घटाकार से परिणाम होता है। तदवच्छिन्न चैतन्य प्रमाण चैतन्य कहा जाता है। यह वृत्ति ही प्रमाण है। उससे अवच्छिन्न चैतन्य प्रमाण चैतन्य कहा जाता है। जब घटाकार वृत्ति होती है तब घटावच्छिन्न चैतन्य का प्रमाण चैतन्य से अभेद होता है तब 'यह घट है' इस प्रकार का घटविषयक चाक्षुषप्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है।
2. पर्वत का
3. प्रत्यक्ष का
4. जाना जाता है।
5. नहीं
6. वेदमूलक शास्त्र विहित कर्मजन्य अन्तः करण का संस्कार विशेष पुण्य कहलाता है।
7. नहीं।
8. नहीं।
9. वह प्रत्यक्ष योग्य वर्तमान विषय अवच्छिन्न चैतन्याभिनत्व तदाकारवृत्त्यवच्छिन्न ज्ञान का त्ततदांश में प्रत्यक्षत्व होता है।
10. जगद् अवच्छिन्न चैतन्य में।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 6.4

1. नहीं।
2. नहीं।
3. नहीं।
4. जिनके प्रकाशन में प्रमाणवृत्ति अपेक्षित है अथवा अनुमानादिप्रमाणव्यापार अपेक्षित है वे विषय साक्षिवेद्य कहलाते है।
5. जिनके प्रकाशन के लिए प्रमाण वृत्ति अपेक्षित नहीं है तथा अनुमानादि प्रमाण भी अपेक्षित नहीं है, केवल अवद्यावृत्ति ही अपेक्षित है वे विषय केवल साक्षी वेद्य कहलाते है।
6. स्वाकार वृत्युपहित प्रमाता चैतन्य का सत्ता अतिरिक्त सत्ताकत्वशून्यत्व में योग्यता होने पर वर्तमात्व विषयगत प्रत्यक्षत्व होता है।